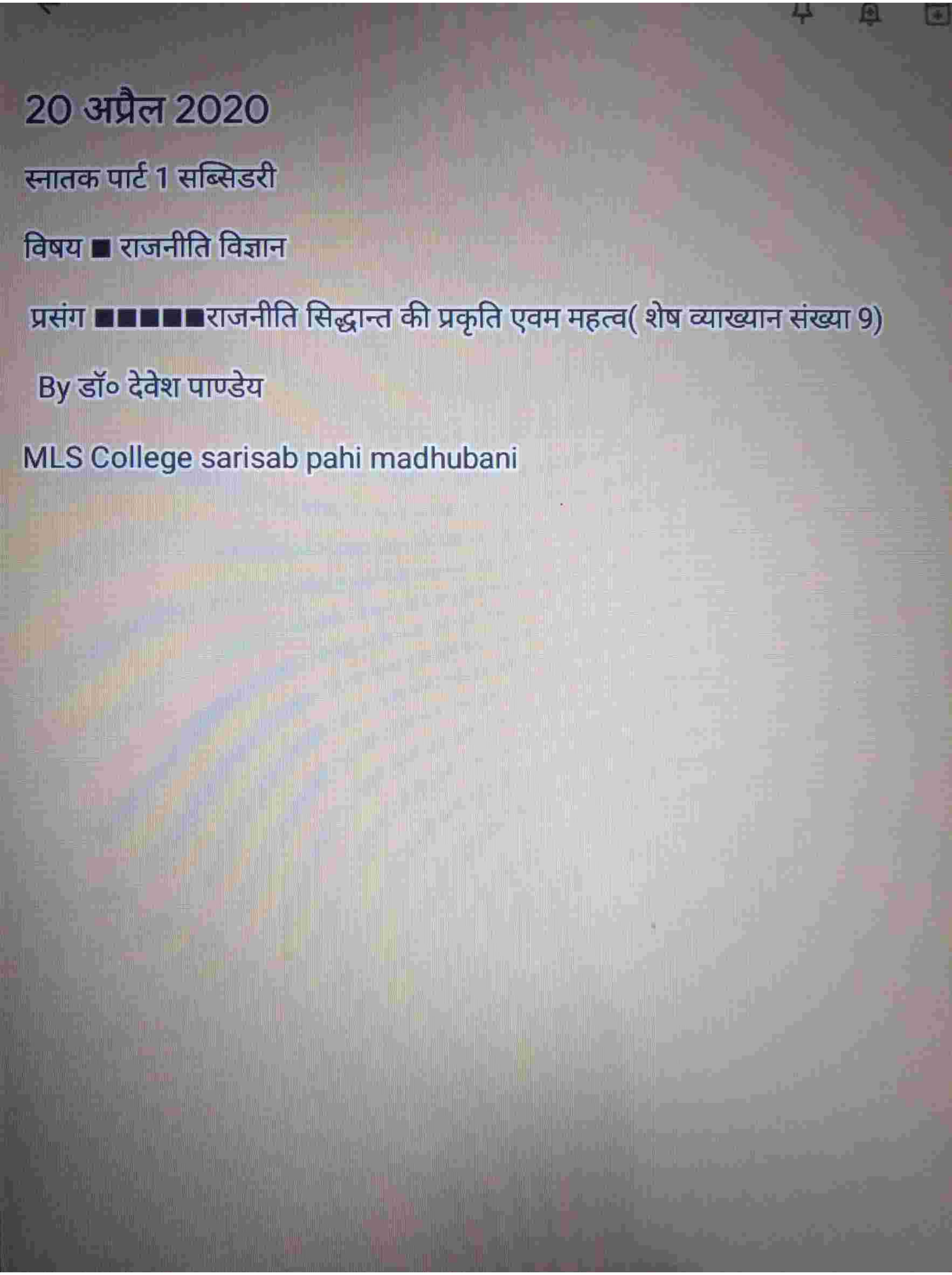

20 अप्रैल 2020

स्नातक पार्ट 1 सब्सिडरी

विषय ■ राजनीति विज्ञान

प्रसंग ■■■■■■राजनीति सिद्धान्त की प्रकृति एवम महत्व(शेष व्याख्यान संख्या 9)

By डॉ० देवेश पाण्डेय

MLS College sarisab pahi madhubani

1.2.1 क्लासिकी राजनीतिक सिद्धांत (Classics Political Theory)

जो राजनीतिक सिद्धांत छठी सदी ई. पूर्व में उदित होकर यूनानियों, रोमनों तथा प्रारंभिक यूरोपीय चिंतकों और दार्शनिकों के माध्यम से विकसित हुआ उसे क्लासिकी राजनीतिक सिद्धांत कहते हैं। यूनानियों में अफलातून और अरस्तु दो ऐसे चिंतक हैं जिनके विचारों को आज भी पढ़ा जाता है और जिनका प्रभाव आज तक है। क्लासिकी राजनीतिक सिद्धांत पर दर्शन का गहरा प्रभाव था और पूरा जोर सर्वाधिक सामान्य सत्यों की तलाश के लिए जीवन की समग्रता में देखने पर था। इसलिए दार्शनिक, धर्मतात्विक और राजनीतिक प्रश्नों के बीच भेद करना कठिन था और राजनीति विज्ञान या राजनीतिक चिंतन को विधा की एक अलग शाखा के रूप में नहीं देखा जाता था। राजनीतिक सिद्धांत का काम प्रश्नों की छानबीन करना, महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछना और राजनीति के सद्‌विवेक के एक प्रकार के रक्षक का था। अंतर्निहित तलाश सरकार के यथासंभव अच्छे से अच्छे रूप की थी। राज्य और सरकार को भी मनुष्य और समाज के नैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति और अच्छाई को बढ़ावा देने के साधन माना जाता था। इस प्रकार राज्य को समुदाय के सदस्यों में उच्च नैतिक मानों के प्रतिष्ठापक का काम करना था। इस संबंध में कुछ बहस चली कि व्यक्ति की भलाई को प्राथमिकता दी जाए या सामान्यत: सबकी भलाई को। सबकी भलाई को व्यक्ति की निजी भलाई से ज्यादा जरूरत महसूस की गई। क्लासिकी परंपरा ने एक आदर्श राज्य और स्थिर प्रणाली के उपायों की

1.3 राजनीतिक सिद्धांत की उपयोगिता (Uses of Political Theory)

राजनीति में राजनीतिक सिद्धांत का अपना ही विशेष महत्त्व रहा है हालाँकि पिछली शताब्दी के अंतिम दशक तक कुछ विद्वानों द्वारा राजनीतिशास्त्र, राजनीतिक दर्शन, राजनीतिक सिद्धांत तथा राजनीति को एक-दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है लेकिन 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में शुरू हुई व्यवहारवादी क्रांति के कारण राजनीतिक विद्वान ने इन सभी शब्दावलियों को स्पष्ट शब्दरुचि देने में सफलता प्राप्त की। अत: आज इन शब्दों को एक निश्चित अर्थ के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। जहाँ तक राजनीतिक सिद्धांत का प्रश्न है, इसका अर्थ जानने के लिए इसे दो भागों में विभक्त किया जाता है। राजनीति के लिए Politics (पॉलिटिक्स) शब्द का प्रयोग किया जाता है। राजनीति में सामान्यत: औपचारिक संरचनाओं जैसे–राज्य, शासक व शासन तथा उनके परस्पर संबंधों का अध्ययन तो किया जाता है साथ ही साथ अनौपचारिक संरचनाओं जैसे–राजनीतिक दल, दबाव समूह, युग संगठन, जनमत आदि का अध्ययन भी किया जाता है। अत: राजनीति का संबंध संकीर्ण न होकर विस्तृत है।

'सिद्धांत' को अंग्रेजी में Theroy (थ्योरी) कहा जाता है। इस शब्द की उत्पत्ति वस्तुत: ग्रीक भाषा के शब्द थ्योरिया (Theoria) से हुई है जिसका अर्थ है **'भावनात्मक चिंतन'** जिसका अभिप्राय है, एक ऐसी मानसिक दृष्टि जो कि एक वस्तु के अस्तित्व और उसके कारणों को प्रकट करती है लेकिन वर्णन मात्र ही सिद्धांत नहीं कहलाता। इस विषय में आर्नोल्ड ब्रेस्ट का कहना है कि किसी भी विषय के संबंध में एक लेखक की पूरी की पूरी सोच या समझ शामिल रहती है। उनमें तथ्यों का वर्णन, उनकी व्याख्या, लेखक का इतिहास बोध, उसकी मान्यताएँ और वे लक्ष्य शामिल हैं जिनके लिए किसी भी सिद्धांत का प्रतिपादन किया जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि राजनीतिक विद्वानों द्वारा जिस विषय से संबंधित सिद्धांत का निर्माण किया जाता है। उस विषय के बारे में उसको उसका पूर्ण ऐतिहासिक ज्ञान रखना पड़ता है, साथ ही साथ पूर्ण तथ्यों को एकत्रित कर वह मूल्यांकन करते हुए निष्कर्षों को जन्म देता है।

राजनीतिक सिद्धांत को विभिन्न लेखकों ने अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है जैसे–

कार्ल पोपर के अनुसार–"सिद्धांत एक प्रकार का जाल है जिससे संसार को पकड़ा जा सकता है ताकि उसे समझा जा सके। यह एक अनुभवपूरक व्याख्या के प्रारूप की अपने मन की आँख पर बनाई गई रचना है।"

एन्ड्यू हेकर के अनुसार–"राजनीतिक सिद्धांत में तथ्य और मूल्य दोनों समाहित हैं। वे एक-दूसरे के पूरक हैं।"

डेविड हैल्ड–"राजीतिक सिद्धांत राजनीतिक जीवन से संबंधित अवधारणाओं और व्यापक अनुमानों का एक ऐसा ताना-बाना है जिसमें शासन, राज्य और समाज की प्रकृति व लक्ष्यों और मनुष्यों की राजनीतिक क्षमताओं का विवरण शामिल है।"

बर्नाड क्रिक–"राजनीतिक सिद्धांत साधारणतया राजनीतिक जीवन से उत्पन्न दृष्टिकोण व क्रियाओं की व्याख्या करने का प्रयास करता है।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि राजनीतिक सिद्धांत में मुख्य तीन तत्त्वों का समावेश होता है। प्रथम तत्त्व अवलोकन कहलाता है जिसके अन्तर्गत कोई सिद्धांतशास्त्री राज्य और शासन से संबंधित तथ्यों व आंकड़ों को एकत्रित कर उसमें से उपयुक्त घटनाओं और तथ्यों का चयन करता है जिनका प्रयोग वह अपने विचारों की पुष्टि के लिए करता है। उदाहरण के तौर पर प्लेटो, हॉब्स, लॉक, मैक्यावली, मार्क्स आदि सभी विद्वानों ने तत्कालीन परिस्थितियों का विवेचन इस कारण किया क्योंकि वे उन परिस्थितियों से असंतुष्ट थे तथा उनमें से कोई

मार्ग निकालना चाहते थे। हॉब्स ने अपने समय की अराजकता की परिस्थिति को देखते हुए निरंकुश राजतंत्र का समर्थन किया था। दूसरा तत्त्व व्याख्या से संबंधित है, इसके अन्तर्गत जिन तथ्यों और घटनाओं को सिद्धांतशास्त्रियों द्वारा एकत्रित किया जाता है उसमें से अनुचित और अनावश्यक सामग्री को दूर किया जाता है जिसके पश्चात् उचित सामग्री को विभिन्न श्रेणी में विभक्त कर उसका विश्लेषण किया जाता है और तत्पश्चात् 'कारण' और 'कार्य' के बीच संबंध स्थापित किया जाता है। इससे जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उसे ही सिद्धांत कहा जाता है। अतः इस प्रकार अवलोकन में जहाँ सिर्फ तथ्यात्मकता तक सीमित रहता है वही अन्तर्गत तथ्यों के चयन से परे जाकर एक सिद्धांत का रूप धारण कर लेती है। वास्तव में किसी भी सिद्धांत की वैज्ञानिकता इस बात पर निर्भर करती है कि तथ्यों के चयन और व्याख्या में कितनी विलासता और ईमानदारी का पालन किया जाता है। राजनीति का सिद्धांत का अंतिम तत्त्व मूल्यांकन है। तथ्य और मूल्य का सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया में विशेष महत्त्व है। जिसमें किसी एक के अभाव में सिद्धांत का निर्माण संभव नहीं है। इसीलिए सिद्धांतशास्त्रियों को एक साथ वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों की भूमिका निभानी पड़ती है। जिसके अन्तर्गत उसे जहाँ एक तरफ तथ्यों और घटनाओं को एकत्रित करना होता है वहीं दूसरी ओर मूल्यों के रूप में अपने आदर्शों व लक्ष्यों को निर्धारित करना होता है। हालांकि, लोकतंत्र, मताधिकार, स्वतंत्रता, समानता और न्याय का मूल्यांकन करते समय वह अपने रुचियों से बँधा होता है लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाला सिद्धांतशास्त्री स्वयं की रुचि और आदर्शों को एक तरफ रखकर वैज्ञानिक विधियों के आधार पर सिद्धांत का निर्माण कर सकता है। इतना होते हुए भी दोनों परिस्थितियों में मूल्य-निर्धारण का महत्त्व कम नहीं होता।

20 अप्रैल 2020

स्नातक पार्ट 2 ऑनर्स

विषय ■ राजनीति विज्ञान

प्रसंग★★☆ तुलनात्मक राजनीति के उपागम(शेष व्याख्यान सँख्या 9)

By डॉ० देवेश पाण्डेय

MLS College sarisab pahi madhubani

राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण पर ईस्टन तथा आमण्ड व पॉवेल के विचार

(Easton and Almond-Powell's views on Political System Analysis)

डेविड ईस्टन को ही व्यवस्था विश्लेषण का प्रतिपादक माना जाता है। उन्होंने 1953 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'The Political System' में राजनीतिक विज्ञान में एक सामान्य सिद्धान्त निर्माण का विचार पेश किया था। उसके बाद उसने 1965 में अपनी पुस्तकों 'A Framework for Political Analysis' तथा 'A System Analysis of Political Life' में व्यवस्था विश्लेषण के विकास पर बल दिया। उसने राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या करते हुए लिखा है कि राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण उप-व्यवस्था है। यह एक खुली और स्वयं को समंजित (Adjust) करने वाली व्यवस्था है जो एक वातावरण में कार्य करती है। यह पर्यावरण अन्तःसमाजीय और ब्रह्म-समाजीय दो प्रकार का होता है। हर राजनीतिक व्यवस्था के दो विशेष अनुलक्षण होते हैं। प्रथम तो वह आदानों-प्रदानों और कार्य-सम्पादनों की प्रक्रिया है और दूसरी, वह उत्पात्तों और दबावों को सहन करती है। उसकी आदान-प्रदान की प्रक्रिया पर्यावरण तथा उसके अन्दर ही

चलती है। उसके उत्पातों व दबावों से उसकी रक्षा करने के लिए उसके अन्दर ही मुआवजे की प्रक्रियाएं होती हैं। ये उत्पात या दबाव पर्यावरण से आते हैं जो राजनीतिक व्यवस्था को अनुकूल भी हो सकते हैं और प्रतिकूल भी। इस तरह राजनीतिक व्यवस्था कार्य-निष्पादन की ऐसी व्यवस्था है जो पर्यावरण तथा व्यवस्था की भीतर उत्पन्न दबावों या उत्पातों के वशीभूत रहकर कार्य करती है। राजनीतिक व्यवस्था के तीन संघटक (Components)-राजनीति व्यवस्था के निवेश, मांगों का रूपान्तरण तथा राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत है।

(I) **निवेश** (Input) :- ईस्टन का मानना है कि राजनीतिक व्यवस्था ऐसे वातावरण में कार्य करती है जहां पर इसके ऊपर सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव पड़ते हैं। इस पर समाज में रहने वाली विभिन्न जातियों का भी प्रभाव पड़ सकता है। यह प्रभाव निवेशन कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है। (i) मांग (Demand) (ii) समर्थन (Support)। वातावरण के वे प्रभाव जो राजनीतिक व्यवस्था पर कोई न कोई दबाव डालते हैं, जिससे राजनीतिक व्यवस्था दूसरी दिशा में उन्मुख होती है, मांग कहलाते हैं। ये मांग सामान्य और विशिष्ट दो तरह की हो सकती है। निवेशन का दूसरा पक्ष समर्थ है। समर्थन राजनीतिक वस्तुओं की तरफ अभिमुखी होता है। यह सकारात्मक या नकारात्मक, अतिव तात्मक या सक्रिय तथा खुला अर्थात् प्रकट या अप्रकट हो सकता है। इसका उद्देश्य सत्तारूढ़ अधिकारियों की मदद करना, राजनीतिक जीवन के नियमों व कानूनों में स्थायित्व लाना और उन्हें लागू करना तथा समाज के सदस्यों में एकता और संगठन कायम रखना होता है। सकारात्मक समर्थन राजनीतिक व्यवस्था का पोषक तथा नकारात्मक समर्थन व्यवस्था का शोषक होता है।

(II) **मांगों का रूपान्तरण** (**The Conversion of Demands**) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने समर्थनों और साधनों का प्रयोग मांगों को अस्वीकार करने, उनको पूरा करने या उनमें परिवर्तन करने के लिए करती है। कुछ मांगें तो सकारात्मक या नकारात्मक ढंग से पूरी कर दी जाती हैं। कुछ को सामान्य मांग में बदलकर सामान्य नियम बना दिए जाते हैं और सामान्य हित के लिए मुद्दों के रूप में मान्यता दे दी जाती है। मांगों की संख्या कम करके उन्हें साधनों के अनुकूल बनाया जाता है। इस स्तर पर उचित व अनुचित मांगों पर विचार करके उनका समूहीकरण कर दिया जाता है। मांगों का रूपान्तरण इस तरह किया जाता है कि उन्हें जनसमर्थन मिलने लगता है।

(III) **निर्गत** (Output) :- मांग और समर्थन के आधार पर जो निर्णय रूपान्तरण प्रक्रिया के माध्यम से लिए जाते हैं, उन्हें निर्गत कहा जाता है। ये निर्गत सत्तात्मक (Authoritative) तथा सहनिर्गत (Associated) दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के निर्गत बन्धनकारी होते हैं जो सामान्य कानूनों से लेकर न्यायालय के विशिष्ट निर्णयों के रूप में भी होते हैं। सह-निर्गत निर्देशात्मक होते हैं। ये बन्धनकारी नहीं होते। निर्गतों का सम्बन्ध विधायिका, कार्यपालिका या न्यायपालिका से होता है। ये निर्गत निर्णयों, नीतियों या नियमों के रूप में सरकारी अभिकरणों के द्वारा लागू किए जाते हैं।

ईस्टन अपने आगत-निर्गत की प्रक्रिया से प्रतिसम्भरण की दोहरी व्यवस्था का भी जिक्र करता है। जब निर्णयों का प्रभाव नीतियों के रूप में जनता पर पड़ता है तो उसके लिए शासक वर्ग अपने निर्गतों की प्रभावकारिता जांचने के लिए तथा उन्हें पुनः समायोजित करने के लिए प्रतिसम्भरण का सहारा लेता है। ईस्टन ने प्रतिसम्भरण को निर्गतों के साथ ही जोड़ा है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध निर्गतों से होता है। प्रतिसम्भरण द्वारा निवेश व निर्गतों के चक्रीय ढाँचे में सम्बन्ध स्थापित रखा जाता है। इसमें निर्गतन की प्रक्रिया वातावरण से एक बार फिर पुनः निवेशन के रूप में राजनीतिक

व्यवस्था को प्रभावित करती है और यही राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाए रखने का आधार है।

इस प्रकार ईस्टन का 'Input-Output' का मॉडल एक ऐसा सांचा है जिसके द्वारा किसी भी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन किया जा सकता है। इसी तरह ऑमण्ड व पॉवेल ने भी राजनीतिक व्यवस्था के बारे में अध्ययन के लिए संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक मॉडल प्रस्तुत किया है। उसने राजनीतिक व्यवस्था को परिभाषित करते हुए कहा है कि राजनीतिक व्यवस्था सभी स्वतन्त्र समाजों के अन्तःक्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है जो बहुत कुछ वैध भौतिक बाध्यता का प्रयोग करके अथवा प्रयोग करने की धमकी देकर एकीकरण और अनुकूलन के कार्यों का सम्पादन करती है। ऑमण्ड व पॉवेल के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था के तीन संघटक (Components) राजनीतिक संरचनाएं, राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक नेतृत्व हैं। इन संघटकों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाया जाता है। इनके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्य - (i) मांगों का चयन व संयुक्तीकरण (ii) मांगों का रूपान्तरण या निर्गतन (iii) व्यवस्था का अनुरक्षण (Maintenance) (iv) व्यवस्था का अनुकूलन करना है। ऑमण्ड व पॉवेल ने भी ईस्टन के आगत-निर्गत मॉडल को लगभग स्वीकार किया है। लेकिन निवेशों के बारे में दोनों के विचारों को साम्य होते हुए भी रूपान्तरण और निर्गतों के बारे में ऑमण्ड की दृष्टि अधिक व्यापक है। ऑमण्ड व पॉवेल ने राजनीतिक व्यवस्था को आगत-निर्गत के रूप में न समझकर संरचनात्मक व कार्यात्मक आधार पर समझने का प्रयास किया है। सभी राजनीतिक व्यवस्थाएं ऑमण्ड व पॉवेल द्वारा बताए गए कार्य ही निष्पादित करती हैं। इसलिए उससे प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ईस्टन तथा ऑमण्ड-पॉवेल ने राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण का विकास करके सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने हेतु महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराई है। व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण व नीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए एक बहुत ही उपयोगी उपागम है।